बोर्ड परीक्षा : एक दमनकारी एवं प्रतिगामी कदम

मुरारी झा

देश के नीतिगत दस्तावेजों में सम्पूर्ण परीक्षा पद्धति पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया जाता रहा है। यह हमेशा से आलोचना का विषय रही है। 'शिक्षा बिना बोझ के' में वर्णित है कि दसवीं और बारहवीं के अन्त में होने वाली बोर्ड परीक्षा की इस दृष्टि से समीक्षा की जानी चाहिए कि अभी के पाठ आधारित और प्रश्नोत्तरी प्रकार की परीक्षा की विधि को बदल दिया जाए क्योंकि इससे न केवल तनाव का स्तर बहुत बढ़ जाता है बल्कि रूढ़िबद्ध अध्ययन को भी बढ़ावा मिलता है। फिर भी पिछले दिनों सीबीएसई द्वारा बोर्ड परीक्षा को दसवीं कक्षा में अनिवार्य कर दिया गया है। यह आलेख शिक्षा में कथित सुधार के इस प्रतिगामी कदम का शिक्षक के अनुभवों से उपजा आलोचनात्मक नजरिया प्रस्तुत करता है यह दर्शाता है कि कैसे यह निर्णय शिक्षा की प्रगतिशील पहलकदमियों को हतोत्साहित करने का जरिया बन रहा है। यह भविष्य में संस्थागत परिवर्तनों को भी प्रभावित करेगा। सं.

यह लेख हाल ही में सीबीएसई द्वारा दसवीं कक्षा में एक बार फिर से बोर्ड परीक्षा को अनिवार्य कर दिए जाने के सम्बन्ध में है। लेख में एक शिक्षक के नज़रिए से चीज़ों को देखने की कोशिश की गई है। लेख इस बात का विश्लेषण करता है कि यह पहल किस प्रकार प्रगतिशील शिक्षकों को हतोत्साहित करेगी और शिक्षा में होने वाले सुधारों के लिए एक प्रतिगामी कदम साबित होगी।

हाल ही में सीबीएसई की तरफ से जारी एक विज्ञप्ति के अनुसार आगामी शिक्षा सत्र से बोर्ड परीक्षा को 10वीं कक्षा में फिर से अनिवार्य कर दिया गया है। ऐसा कहा गया है कि शिक्षक तथा अभिभावक इस बात की माँग कर रहे थे एवं इसके हट जाने से विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति गम्भीरता कम हो गई थी। कुछ शिक्षकों के शब्दों में कहें तो 'बच्चों ने डरना बन्द कर दिया था'। अरे भाई! किस से डरना बन्द कर दिया था? परीक्षा से.... हाँ, लेकिन शिक्षकों का एक समूह ऐसा मान बैठा था कि बच्चों ने उनसे भी डरना बन्द कर दिया है। डण्डा तो पहले ही छिन गया था। सभी शिक्षक बोर्ड परीक्षा का स्वागत कर रहे हों ऐसी बात नहीं है। इसका विरोध करने वाले शिक्षक की हैसियत से मैं अपनी बात यहाँ लिख रहा हूँ।

बोर्ड परीक्षा का हट जाना या फिर से उसको बहाल करना, एक मामूली-सी घटना लग सकती है, परन्तु इससे कई सारे सवालों के साथ देखने की ज़रूरत है।

बोर्ड परीक्षा को लेकर सामाजिक मुश्किलें

बोर्ड के आने के साथ ही जो पहली प्रतिक्रिया शिक्षकों के एक समूह की थी कि अब बच्चे डरेंगे- मानो बच्चों को डराना शिक्षक और शिक्षा व्यवस्था के सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्यों में से एक हो! मुझे तो लगता है कि शिक्षा को हमेशा से ही डरावना बनाए रखने की परम्परा रही है। उदाहरण के तौर पर इसको कुछ ही वर्गों तक सीमित रखना, ऐसे शब्दों का इस्तेमाल करना जो जनसामान्य के बीच प्रचलन में नहीं हों, आदि।

एक ऐतिहासिक परम्परा रही है जिसमें शिक्षा का इस्तेमाल कुछ खास वर्गों को डराने के लिए किया जाता रहा है। आज भी बहुत आसानी से यह कह दिया जाता है कि ये झुग्गी-झोपड़ी के बच्चे नहीं पढ़ सकते हैं। इस ऐतिहासिक परम्परा को ध्यान में रखते हुए अगर देखें तो शिक्षकों की यह प्रतिक्रिया कि 'अब बच्चे डरेंगे' आपको असहज नहीं लगेगी। हमें इस बात पर भी गौर करना चाहिए कि आखिर इस डर की संस्कृति में शिक्षा लेने वाले बच्चे एक नागरिक के रूप में क्या करेंगे? स्कूल में शिक्षकों से डरेंगे, बाद में पुलिस से डरेंगे, दबंगों से डरेंगे, अपने बॉस से डरेंगे, नेताओं से डरेंगे; सिर्फ डरेंगे ही नहीं मौका मिलने पर डराएँगे भी। डरने वाले लोगों की गहरी लालसा होती है कि काश! वो भी कभी डराने वाले बनें। मेरे स्कूल में आठवीं कक्षा के एक छात्र ने किसी के बगीचे से एक अमरूद तोड़ लिया, पुलिस में शिकायत की गई, चोरी का इल्ज़ाम लगाया गया। शायद पुलिस के द्वारा कुछ मार-पिटाई भी की गई। अब जब मैं उससे पूछता हूँ कि आप क्या बनोगे तो वो कहता हैं कि पुलिस बनूँगा। मैं अपने सीमित अनुभव से यह कह सकता हूँ कि शोषितों में 'शोषक' बनने की अभिलाषा बहुत अधिक होती है। इस तरह हम डर की एक संस्कृति पैदा करते हैं। डर रचनात्मकता को बहुत प्रभावित करता है। याद करिए टैगोर के वो शब्द जिनमें वे एक ऐसे विश्व की कल्पना करते हैं जिसमें डर न हो। हम सब ने इस कल्पना को काफ़ी सराहा भी है, लेकिन हमें बोर्ड एग्जाम भी चाहिए।

नवीनतम प्रयोगों को हतोत्साहित करती बोर्ड परीक्षा

क्या होगा उन प्रयोगों का जो देश भर में कुछ शिक्षक अपनी कक्षा में करते रहे हैं। उन में से एक प्रयोग के बारे में यहाँ विस्तार से लिखूँगा और फिर पाठकों से यह सवाल होगा कि इस तरह के कामों के लिए इस व्यवस्था में कहाँ जगह है?

मुझे ऐसा लगता है कि स्कूल में जो सीखने-सिखाने की प्रक्रिया है वह वास्तविक जीवन में चल रही घटनाओं के सन्दर्भ में हो। हम बच्चों की ज़िन्दगी को, उनके विचारों को कक्षा में जगह दें तथा पाठ्यपुस्तक में लिखी हुई जानकारी उनके जीवन के अनुभवों से जोड़ी जाए। इस तरह के कार्य के लिए आपको एक तरह की स्वतन्त्रता चाहिए और ये स्वतन्त्रता आप कहाँ से लाएँगे जब आप बोर्ड परीक्षा के लिए पढ़ाएँगे।

किस तरह के काम की बात कर रहा हूँ मैं... चलिए, बच्चों की भाषा में ही देखते हैं इसे...

"आज मुझे लिखने के लिए कोई भी टॉपिक समझ में नहीं आ रहा है, मैंने बहुत सोचा लेकिन फिर भी कुछ समझ में नहीं आ रहा है। दिमाग में एक टॉपिक आया जो अभी भारत में चल रहा है– नोटबन्दी, पर कुछ देर तक सोचने के बाद मुझे ये टॉपिक अच्छा नहीं लगा, इसलिए मैंने इस टॉपिक पर नहीं लिखा। हमारे सर कहते हैं कि तुम जो भी टॉपिक लिखो, वो तुम्हारा अनुभव होना चाहिए, वो स्टोरी तुमसे जुड़ी होनी चाहिए... पर फिर भी मुझे कुछ भी समझ नहीं आ रहा था, क्योंकि एक पेज लिखने की चिन्ता नहीं थी, मेरा दिमाग कहीं ओर ही था। पता नहीं क्यों, आज मुझे कोई टॉपिक नहीं मिल रहा था इसलिए मैंने अपने न लिखने की वज़ह को ही अपना टॉपिक बना लिया।"

एक दूसरे बच्चे ने इसी तरह का एक लेख साझा किया–

"सर हमें रोज़ाना एक पेज़ लिखने के लिए कहते हैं, वे बोलते हैं कि कुछ भी कहीं से किसी के बारे में लिखो और वो लिखो जो तुम्हारा अनुभव हो... जो तुम महसूस करते हो। आप तो बड़ी आसानी से कह देते हैं पर जब मैं लिखने बैठती हूँ तो बहुत 'कन्फ्यूज्ड' हो जाती हूँ कि किसके बारे में लिखूँ... क्या लिखूँ... कैसे लिखूँ... कैसे शुरू करूँ और कैसे अन्त करूँ? थोड़ी देर बाद एक टॉपिक को लेकर उसके बारे में सोचती हूँ... उसकी शुरुआत करती हूँ, फिर धीरे-धीरे उसके बारे में लिखते-लिखते पेज़ पूरा

हो जाता है। फिर ये समझ नहीं आता कि ख़त्म कहाँ करूँ, कभी-कभी तो लिखते-लिखते शब्द खत्म ही नहीं होते। बहुत आसान होता है अपने शब्दों में लिखना। लेकिन कोई टॉपिक होना चाहिए जिसके बारे में हम जानते हों और उसे महसूस किया हो, तभी हम आसानी से लिख सकते हैं।"

मैं कुछ और इसमें जोड़ना चाहता हूँ। ये तो था कि बच्चे किस तरह इस पूरे काम को देख पाए समझ पाए। एक शिक्षक के रूप में जो बात मुझे बहुत परेशान करती है, वह है स्कूल के अन्दर की बनावटी दुनिया। हम कुछ ऐसा करते हुए दिखना चाहते हैं जो हमारी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से बहुत अलग होता है, किसी विषय को इसलिए पढ़ रहे होते हैं क्योंकि वह पाठ्यक्रम का हिस्सा है तथा परीक्षा में उस पाठ्यक्रम से जुड़े सवाल पूछे जाएँगे। हालात इस कदर बनावटी रूप ले चुके हैं कि आप बच्चों से पूछें कि जल की हमारे जीवन में क्या उपयोगिता है? तो बच्चों का जवाब होता है– "सर, कल याद करके बता दूँगा।" मेरी यह एक ज़िद रही है कि किसी तरह अपनी कक्षा में होने वाले काम को बनावटी होने से बचाऊँ तथा पाठ्यक्रम में निर्देशित विषयों को बच्चों की रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से जोड़ पाऊँ। मैं रोज़मर्रा की ज़िन्दगी को तो नियंत्रित नहीं कर सकता हूँ, लेकिन हाँ, पाठ्यक्रम को कुछ हद तक मैं समायोजित करने की कोशिश ज़रूर करता हूँ।

ये सब होता कैसे है ?

मेरे साथ कक्षा में सीखने वाले बच्चों को एक पेज़ हर दिन लिख के लाना होता है। टॉपिक मैं तय नहीं करता हूँ। मुझे लगता है कि 'किस मुद्दे पर लिखूँ' यह तय करने के लिए भी बच्चे विचारों की एक प्रक्रिया से गुज़रते हैं और यह प्रक्रिया शायद उनके टॉपिक से ज़्यादा महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त एक फ़ायदा यह भी होता है कि अगर 40 बच्चे कक्षा में हैं तो 40 अलग-अलग मुद्दों पर आपके पास लेख आ जाते हैं और इस बात की तुलना भी नहीं होती कि किसका अच्छा है और किसका बुरा। मैं सरसरी निगाहों से तय करता हूँ कि सभी बच्चों ने यह लिखा है या नहीं, फिर बच्चों के पास इस बात का विकल्प होता है कि चाहें तो मुझे अपना लेख पढ़ने की इजाज़त दें और चाहें तो नहीं दें। कुछ लेखों के साथ चर्चा शुरू होती है और वह पाठ्यक्रम के किसी हिस्से से जुड़ जाती है। कई बार बच्चे इस बारे में नहीं जानते हैं और बातों ही बातों में हम पाठ्यक्रम में निर्देशित किसी पाठ को पढ़ लेते हैं। बाद में मैं उन्हें बता देता हूँ कि हमने ये वाला पाठ पढ़ लिया है। उदाहरण के लिए 10वीं कक्षा में *लोकतांत्रिक राजनीति* नाम की पुस्तक में एक पाठ है "लिंग, जाति एवं धर्म", इस पाठ को हम ने बच्चों के ऐसे ही एक लेख के माध्यम से पढ़ा था। अब सवाल यह है कि मैं और मेरे जैसे हजारों शिक्षक जो अपनी कक्षा को परीक्षा-तंत्र के शिकंजे से निकालने का कुछ प्रयास करते हैं उनका क्या होगा? क्या होगा उन बच्चों का जो वो बातें भी सीखना चाहते हैं जो उनकी ज़िन्दगी से जुड़ी हैं और शायद जिसके लिए परीक्षा-तंत्र में कोई जगह नहीं है? आप अगर कभी स्कूल आएँ और 12वीं कक्षा के बगल से गुजरें तो इस बोर्ड परीक्षा की ताकत का अन्दाज़ा आप लगा सकते हैं। 40 के आस-पास बच्चे इस कदर खामोश रहते हैं मानो उन्होंने मौन धारण कर लिया हो..... स्कूल में हो रही अन्य घटनाओं से उनका कोई वास्ता नहीं होता है, यहाँ तक कि सुबह की प्रार्थना के समय भी उनको पढ़ाई करवाई जाती है। हर दिन एक घण्टे की अतिरिक्त पढ़ाई होती है। सर्दी और गर्मी की छुट्टी में भी इनको स्कूल बुलाया जाता है। और यही सब एक बार फिर से 10वीं के बच्चों के साथ होगा। इतनी ज़द्दोज़हद किस बात के लिए, भई बोर्ड परीक्षा जो होने वाली है!

बोर्ड परीक्षा को शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि के रूप में देखने की भूल

दलील दी जाती है कि बोर्ड परीक्षा से शिक्षा की 'गुणवत्ता' में सुधार आएगा। लेकिन इस

गुणवत्ता का होगा क्या? उच्च शिक्षा में तो अभी भी कुछ ही लोगों के लिए सुविधाएँ हैं, आपने उच्च शिक्षा में प्रवेश के लिए अलग से प्रवेश परीक्षा रखी ही हुई है, नौकरी में जाने के लिए अलग से परीक्षा तथा साक्षात्कार का प्रावधान है ही..... तो फिर आपको सिर्फ़ इस बात से परेशानी है कि कुछ ज़्यादा बच्चों को सर्टिफिकेट क्यों मिल जाता है? सर्टिफिकेट आधुनिक बाज़ार आधारित अर्थव्यवस्था में रोजगार पाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। फिर चाहे वह अकुशल रोज़गार ही क्यों न हो, सर्टिफिकेट अनिवार्य हो गया है, हजारों की संख्या में जो लोग ड्राइवर का, गार्ड का, इत्यादि काम ढूँढ़ने के लिए बाज़ार में जाते हैं और जिनके पास सर्टिफिकेट नहीं होता है तो उन्हें नौकरी पर नहीं रखा जाता है। ये लोग 'गुणवत्ता' पूर्ण शिक्षा के शिकार हो जाते हैं।

आँकड़े क्या बताते हैं ?

वर्ष	10वीं कक्षा उत्तीर्ण %	12वीं कक्षा उत्तीर्ण %
2009	88.83	81.00
2010	89.28	79.87
2011	96.61	80.88
2012	98.19	80.19
2013	98.76	82.10
2014	98.87	82.66
2015	97.32	82

स्रोत : सीबीएसई वार्षिक रिपोर्ट, 2015-2016

ये आँकड़े बहुत दिलचस्प हैं। 2009 तथा 2010 में 10वीं बोर्ड परीक्षा में करीब-करीब 89 प्रतिशत छात्र उत्तीर्ण हुए। 2012 में जब ये छात्र 12वीं की परीक्षा में बैठे, उस वर्ष उत्तीर्णता का प्रतिशत 80 रहा। 2011 में जब पहली बार 10वीं में बोर्ड परीक्षा को वैकल्पिक बना दिया गया, उस वर्ष करीब-करीब 97 प्रतिशत छात्र उत्तीर्ण हुए। यही बच्चे जब 2013 में 12वीं की परीक्षा में बैठे तो करीब-करीब 82 प्रतिशत छात्र उत्तीर्ण हुए। यही ट्रेण्ड 2014 एवं 2015 के 12वीं बोर्ड परीक्षा के परिणाम में भी देखने को मिलता है। वहीं दूसरी ओर वैकल्पिक बोर्ड परीक्षा की व्यवस्था के बाद 10वीं परीक्षा पास करने वाले छात्रों के प्रतिशत में इज़ाफा हुआ, और 2014 में यह बढ़कर 98.87 तक पहुँच गया, तथा अगले वर्ष 2015 में मामूली गिरावट के साथ 97.32 पर आ गया।

मोटे तौर पर देखें तो वैकल्पिक बोर्ड परीक्षा के आयोजन के बाद से करीब-करीब 10 प्रतिशत ज़्यादा छात्र 10वीं पास होने लगे। साथ ही यह आँकड़े दिखाते हैं कि 12वीं के बोर्ड के रिजल्ट पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। आँकड़ों का व्यापक अध्ययन यह भी दिखाता है कि 2013 से 2015 के बीच अच्छे ग्रेड से पास होने वाले बच्चों की संख्या भी बढ़ी है। ये आँकड़े तो यह दिखाते ही हैं कि गुणवत्ता पर कोई असर नहीं पड़ा। यह सिर्फ एक अफ़वाह थी कि गुणवत्ता में भारी गिरावट आ गई है। फिर ऐसी भी क्या मुसीबत आ गई कि संसद में भी यह मुद्दा उठा और आनन-फ़ानन में बोर्ड परीक्षा को फिर से बहाल करने का फैसला ले लिया गया।

मुझे ऐसा लगता है कि सबसे बड़ी वज़ह है 10 प्रतिशत ज़्यादा बच्चों द्वारा 10वीं की परीक्षा पास कर जाना। समाज में कुछ ऐसे वर्ग हैं जिनको ये बात बिलकुल पसन्द नहीं आई। वे अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाए रखना चाहते हैं। स्कूल में आयोजित होने वाली परीक्षा में जब बच्चे बड़ी संख्या में पास होने लगे तो इनकी विशिष्टता खत्म होने लगी। फिर कुछ लोगों ने शोर मचाना शुरू किया कि शिक्षा की गुणवत्ता घट गई है। इनके पास आवाज़ है और अपनी आवाज़ को दूर तक पहुँचाने की व्यवस्था भी है। वह वर्ग उत्साह से भरा था जिनके घर में पहली बार किसी ने मैट्रिक पास किया, लेकिन यह उत्साह ज़्यादा दिन टिक नहीं सका। हाल ही में एक बच्चे की माँ ने मुझ से ये शब्द कहे, "मैं दूसरों के घरों में काम करने जाती हूँ, झाड़ू और पोंछा लगाते-

लगाते कमर में दर्द रहने लगा है, उम्र भी थोड़ी ज़्यादा हो गई है, कई बार खाना बनाते समय हाथ जल जाता है, लेकिन मैं चाहती हूँ कि मेरी बेटियों को ये सब नहीं करना पड़े। किसी तरह 'एक कागज' यहाँ से मिल जाए।" कागज़ से उनका मतलब सर्टिफिकेट से है। मुझे ऐसा लग रहा था कि ये 'कागज़' उनके जीवन में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। और हो भी क्यों न –कहीं जब रोज़गार ढूँढ़ने जाएँ तो सबसे पहले कागज़ दिखाने के लिए ही तो कहा जाता है।

अब ज़रा सोचिए, 10वीं में 98 प्रतिशत छात्र पास हुए, 12वीं में 82 प्रतिशत- यानी कि करीब-करीब 16 प्रतिशत छात्र स्कूली व्यवस्था से बाहर हो गए, लेकिन उनके पास एक कागज़ तो है जिसके दम पर वे 'मैट्रिक फेल' कहलाने से बच सकेंगे। जब चाहें अपनी पढ़ाई को आगे बढ़ा सकेंगे, कुछ रोजगार प्राप्त कर सकेंगे। यह उस स्थिति से तो ज़रूर बेहतर है जब ये छात्र दसवीं पास नहीं होने के कारण ही स्कूली व्यवस्था से बाहर हो जाते थे।

10वीं में वैकल्पिक बोर्ड परीक्षा के दौरान स्कूल में बच्चों के व्यक्तिगत गुणों को देखा गया। सीसीई के अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था थी कि बच्चों के विशिष्ट गुणों के आधार पर भी उनका मूल्यांकन किया जाए। कई बच्चे जो संगीत, खेल-कूद एवं कला के विभिन्न आयामों में बेहतर प्रदर्शन कर रहे थे, बोर्ड परीक्षा पास करने में सफल हुए। अब इस तरह के गुणों के लिए कोई जगह नहीं होगी।

एक प्रतिगामी कदम

मुझे ऐसा लगता है कि 10वीं में एक बार फिर से बोर्ड परीक्षा को लाना, स्कूली शिक्षा में हो रहे संस्थागत सुधार के लिए एक गहरा झटका है। जब एक तरफ़ सभी संस्थाओं में सुधार की बात चल रही हो, उसी दौर में शिक्षा में होने वाले सुधार को रोक देना भविष्य के लिए बहुत ही खतरनाक है। साथ ही यह कई मायनों में शिक्षक, छात्र एवं स्कूल की स्वतंत्रता छीनने वाला कदम भी है। बोर्ड परीक्षाओं के ऐसे दौर में हम स्कूल की कल्पना एक स्वतंत्र शिक्षा के केन्द्र के रूप में कैसे कर सकते हैं।

हमारी बहुत सारी मान्यताएँ हमारी धारणाओं पर आधारित होती हैं और उनमें से एक धारणा यह है कि अच्छी शिक्षा के लिए डर का होना जरूरी है, जो कि गलत है। बच्चों को डराए बिना पढ़ाने वाले शिक्षकों के लिए, नवीनतम प्रयोग करने वाले शिक्षकों के लिए बोर्ड परीक्षा स्वागत योग्य कदम नहीं है। बोर्ड परीक्षा से सम्बन्धित आँकड़े बताते हैं कि बोर्ड परीक्षा के हट जाने के बाद शिक्षा की गुणवत्ता में कोई बड़ी गिरावट नहीं आई थी बल्कि दबे-कुचले समूहों को रोज़गार पाने के लिए एक सर्टिफिकेट का समर्थन मिल गया था। बोर्ड परीक्षा को फिर से बहाल करना शिक्षा में हो रहे संस्थागत परिवर्तन को बुरी तरह प्रभावित करेगा, यह एक प्रतिगामी कदम साबित होगा।

मुरारी झा पिछले एक दशक से शिक्षा के मसलों पर अध्ययन एवं लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। वर्तमान में दिल्ली के शासकीय विद्यालय में बतौर सामाजिक विज्ञान शिक्षक कार्यरत हैं। सम्पर्कः murarijha1984@gmail.com